

सहजोबाई की 'सोलह तिथियाँ' में आध्यात्मिक चेतना और जीवन-दर्शन

डॉ. रूपधर गोमांगो

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजेन्द्र विश्वविद्यालय, बलांगीर, ओडिशा, भारत

DOI: <https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12240>

सारांश

हिंदी संत काव्य परंपरा में सहजोबाई का काव्य अपनी सहज साधना-दृष्टि, गुरु-निष्ठा, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और आत्मानुभूति के कारण विशिष्ट महत्व रखता है। चरणदासी संत परंपरा से संबद्ध सहजोबाई ने अपने काव्य में आध्यात्मिक अनुभूतियों को लोकजीवन में प्रचलित प्रतीकों और व्यवहारों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। उनकी रचनात्मकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष 'सोलह तिथियाँ' है, जिसमें चंद्रमा की कलाओं और तिथियों को आधार बनाकर साधक के आध्यात्मिक विकास के विभिन्न सोपानों को अभिव्यक्त किया गया है।

'सोलह तिथियाँ' का मूल स्वरूप केवल तिथियों का धार्मिक अथवा ज्योतिषीय विवरण नहीं है। सहजोबाई प्रत्येक तिथि के नाम अथवा प्रथम अक्षर को आधार बनाकर उसके साथ किसी पारमार्थिक तत्व को जोड़ती हैं। अमावस्या के अज्ञान-अंधकार से आरंभ होकर पूर्णिमा के ज्ञान-प्रकाश तक पहुँचने वाली यह यात्रा वस्तुतः जीव की आध्यात्मिक उन्नति की यात्रा है। इसमें नाम-स्मरण, मानव-जन्म की सार्थकता, साधु-संगति, इंद्रिय-संयम, चक्र-साधना, सत्संग, योग, ध्यान, तत्त्वज्ञान, इंद्रिय-निग्रह, आसक्ति-त्याग, देह की नश्वरता, मुक्ति की आकांक्षा तथा सद्गुरु की कृपा जैसे विविध आध्यात्मिक पक्ष क्रमशः उद्घाटित होते हैं।

सहजोबाई की दृष्टि में चंद्रमा की बढ़ती हुई ज्योति जीव की चेतना में बढ़ते हुए ज्ञान का प्रतीक है। जिस प्रकार अमावस्या के अंधकार से पूर्णिमा के पूर्ण प्रकाश तक चंद्रमा की यात्रा होती है, उसी प्रकार अज्ञान में डूबा जीव सद्गुरु के मार्गदर्शन, नाम-स्मरण और साधना के द्वारा आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार 'सोलह तिथियाँ' समय और साधना, लोक और अध्यात्म, देह और आत्मा, अज्ञान और ज्ञान तथा संसार और परमार्थ के बीच एक सार्थक संवाद स्थापित करती हैं।

मूल शब्द: सहजोबाई, सोलह तिथियाँ, संत काव्य, चरणदासी परंपरा, आध्यात्मिक चेतना, जीवन-दर्शन, नाम-स्मरण, गुरु-तत्त्व, योग-साधना, आत्मज्ञान।

प्रस्तावना

हिंदी संत साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण आधार उसकी अनुभवपरकता है। संत कवियों ने आध्यात्मिक सत्य को केवल शास्त्रीय सिद्धांतों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे मनुष्य के जीवनानुभव, लोकभाषा, दैनिक व्यवहार और सहज प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया। इसी कारण संत काव्य में नदी, नाव, कुम्हार, चादर, माटी, दीपक, चंद्रमा, सूर्य, जल, घर, बाजार आदि सामान्य जीवन के प्रतीक गहरे आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करते हैं।

सहजोबाई इसी संत परंपरा की उल्लेखनीय कवयित्री हैं। वे संत चरणदास की शिष्या थीं—“सहजोबाई का जीवन-काल सं. १७४०-१८२० कहा गया है, किन्तु इनके जन्म और मरण की तिथियाँ अज्ञात हैं।...अपने जीवन भर ये अविवाहित और ब्रह्मचारी बनी रह गई। सं. १८०० की फागुनी सुदी ८ बुधवार के दिन इन्होंने अपनी रचना 'सहज प्रकाश' को समाप्त किया।¹ “चरणदासी परंपरा के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है—“ इन्होंने गुरु का स्थान गोविन्द से भी ऊँचा माना है। बीना गुरु के जीव का इस संसार से निस्तार नहीं हो सकता।²

“ उनकी रचनाओं में गुरु-भक्ति, नाम-स्मरण, प्रेम, वैराग्य, साधना, योग, ज्ञान और आत्मानुभूति प्रमुख विषयों के रूप में सामने आते हैं। सहज प्रकाश उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। उनकी वाणी में उपलब्ध 'सोलह तिथियाँ' भी उनकी आध्यात्मिक और काव्यात्मक दृष्टि को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सहजोबाई की विशेषता यह है कि वे किसी अमूर्त दार्शनिक विचार को सीधे दुरुह भाषा में प्रस्तुत नहीं करतीं। वे लोक में परिचित किसी वस्तु या व्यवस्था को ग्रहण करके उसमें आध्यात्मिक अर्थ भर देती हैं। 'सोलह तिथियाँ' में चंद्रमा की कलाओं और तिथियों को इसी उद्देश्य से अपनाया गया है।

अमावस्या में चंद्रमा अदृश्य होता है और क्रमशः उसकी कलाएँ विकसित होती हुई पूर्णिमा में पूर्ण प्रकाश का रूप ग्रहण करती

हैं। सहजोबाई इसी दृश्य प्रक्रिया को जीव की आध्यात्मिक यात्रा का रूपक बना देती हैं। अज्ञान से ज्ञान, बाह्यमुखता से अंतर्मुखता, विषयासक्ति से संयम, संसार-बोध से आत्मबोध और अंततः गुरु-कृपा से अज्ञान-नाश; यह क्रम 'सोलह तिथियों' की आंतरिक संरचना निर्मित करता है।

सोलह तिथियाँ: रचना की संरचना और उद्देश्य

सहजोबाई 'सोलह तिथियों' का आरंभ अपने आध्यात्मिक गुरु-परंपरा के स्मरण से करती हैं। वे पहले सुखदेव को प्रणाम करती हैं और फिर चरणदास के चरणों में अपना ध्यान अर्पित करती हैं—

“परनाम करूँ सुखदेव जी, तुम पर वारूँ प्रान। चरणदास के चरण कूँ, निस दिन राखूँ ध्यान।

सोलह तिथि अब कहत हूँ, इनका दीजै ज्ञान। ज्ञान भक्ति और जोग कूँ, तिथि में करूँ बखान॥³”

इन पंक्तियों से रचना का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। सहजोबाई स्वयं कहती हैं कि वे तिथियों के माध्यम से 'ज्ञान भक्ति और जोग' का वर्णन करने जा रही हैं। अर्थात् यहाँ तिथि स्वयं विषय नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान के प्रस्तुतीकरण का माध्यम है।

रचना की एक दूसरी विशेषता भी ध्यान देने योग्य है। सहजोबाई तिथि के नाम के आरंभिक अक्षर या ध्वनि को लेकर उसके साथ कोई आध्यात्मिक उपदेश जोड़ती हैं। 'मावस' से 'राम' और नाम-स्मरण, 'पड़िवा' से मानव-देह की क्षणभंगुरता, 'दूज' से सांसारिक धंधे और साधु-संगति, 'तीज' से लोभ, 'चौध' से अज्ञान-अंधकार आदि की ओर संकेत किया गया है।

इस प्रकार तिथियाँ एक प्रकार की स्मृति-व्यवस्था का कार्य करती हैं। आध्यात्मिक उपदेश को लोक में प्रचलित समय-चक्र से जोड़ देने के कारण वह आसानी से स्मरणीय हो जाता है।

1. मावस (अमावस्या): अज्ञान से नाम-स्मरण की ओर

‘सोलह तिथियों’ की यात्रा अमावस्या से आरंभ होती है। अमावस्या में चंद्रमा दिखाई नहीं देता। इस दृश्य को सहजोबाई जीव की आध्यात्मिक स्थिति का प्रतीक बनाती हैं;

“ममा ररा दो अंक कूँ राखौ हिरदे माहिं। धर्मराय जाँचौ नहीं लेखा माँगै नाहिं॥

लेखा माँगै नाहिं जाय नहिं जमपुर बंधा। ऐसे निर्मल नाम को बिसरै सो अंधा॥

टीका चारो बेद की महिमा कही न जाय। औसर बीत्यों जात है सहजो सुमिर अघाय॥⁴”

यहाँ ‘ममा ररा’ के माध्यम से ‘राम’ की ओर संकेत किया गया है। अमावस्या का अंधकार जीव के अज्ञान का प्रतीक है। इस अंधकार से बाहर निकलने का पहला साधन नाम-स्मरण है।

“ऐसे निर्मल नाम को बिसरै सो अंधा”— ‘अंधा’ शब्द अत्यंत अर्थगर्भित है। यह शारीरिक दृष्टिहीनता नहीं, बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि के अभाव का संकेत है। जो व्यक्ति जीवन के वास्तविक उद्देश्य को नहीं पहचानता और परम सत्ता के स्मरण को भूल जाता है, वह बाहरी दृष्टि से संसार को देखता हुआ भी आध्यात्मिक अर्थ में अंधा है।

‘औसर बीत्यों जात है’ में समय-बोध भी उपस्थित है। जीवन का अवसर लगातार बीत रहा है। अतः नाम-स्मरण को भविष्य के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता। सहजोबाई के यहाँ आध्यात्मिकता का पहला सोपान ही जागरण है।

2. पड़िवा (प्रतिपदा): मानव-जन्म की क्षणभंगुरता और प्रभु-खोज

अमावस्या के बाद पहली तिथि आती है। सहजोबाई पहली तिथि को मानव-जीवन की क्षणभंगुरता से जोड़ती हैं— “पानी का सा बुलबुला यह तन ऐसा होय। पीव मिलन की ठानिये रहिये ना पड़ि सोय॥⁵”

‘पानी का बुलबुला’ भारतीय संत साहित्य में क्षणभंगुरता का प्रसिद्ध प्रतीक है। बुलबुला दिखाई देता है, चमकता है और अगले ही क्षण समाप्त हो जाता है। मनुष्य का शरीर भी इसी प्रकार नश्वर है।

लेकिन सहजोबाई का उद्देश्य केवल देह की नश्वरता बताना नहीं है। वे नश्वरता-बोध को साधना की प्रेरणा में बदल देती हैं— “बहुर नहिं मनुखा देही। आपन ही कूँ खोज मिलै जब राम सनेही॥⁶”

मानव-जन्म को वे दुर्लभ अवसर मानती हैं। अतः मनुष्य को अपनी चेतना को बाहरी विषयों में नष्ट न करके अपने भीतर परमात्मा की खोज करनी चाहिए। इस प्रकार पहली तिथि में नश्वरता-बोध से आत्म-खोज की दिशा निर्मित होती है।

3. दूज (द्वितीया): संसार से साधु-संगति की ओर

दूसरी तिथि सांसारिक आसक्ति की समस्या को सामने रखती है— “दोयज धंधा जगत का लागि रहै दिन रैन। कुटुंब महा दुख देत है कैसे पावै चौन॥⁷”

सहजोबाई परिवार या संसार को अपने आप में नकारती हुई दिखाई नहीं देती; उनका लक्ष्य उस आसक्ति की ओर है जिसमें मनुष्य अपने आध्यात्मिक उद्देश्य को भूल जाता है। वे आगे कहती हैं— “कैसे पावै चौन बिना साधू की संगत। दुनिया रंग पतंग मजीठी गुरु की रंगत॥⁸”

‘दुनिया का रंग’ और ‘गुरु की रंगत’ के बीच किया गया अंतर महत्वपूर्ण है। सांसारिक रंग परिवर्तनशील है, जबकि गुरु की संगति साधक के जीवन में स्थायी परिवर्तन ला सकती है।

इस प्रकार दूज में सहजोबाई संगति के माध्यम से चेतना के निर्माण का विचार प्रस्तुत करती हैं। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, जिस विचार को सुनता है और जिस आदर्श को अपनाता है, उसकी चेतना उसी के अनुसार निर्मित होती है।

4. तीज (तृतीया): लोभ और विषयासक्ति का त्याग

तीसरी तिथि में सहजोबाई लोभ और सांसारिक आसक्ति को लक्ष्य बनाती हैं— “तीज तनिक सुख कारने बहुत फसायो जीव। लालच लागि ऐसो गिरै जैसे मक्खी घीव॥⁹” मक्खी और घी का बिंब अत्यंत लोकपरिचित है। घी का आकर्षण मक्खी को अपने पास खींचता है, किंतु वही आकर्षण अंततः उसके विनाश का कारण बन जाता है। इसी प्रकार सांसारिक विषयों का क्षणिक सुख मनुष्य को आकर्षित करता है, लेकिन उसकी अत्यधिक आसक्ति मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन को नष्ट कर सकती है। सहजोबाई की दृष्टि में इच्छा और बंधन का संबंध स्पष्ट होता है। वस्तु स्वयं बंधन नहीं है; उसके प्रति अनियंत्रित लालसा बंधन का कारण बनती है।

5. चौथ (चतुर्थी): बाहरी संसार के अंधकार से भीतर के प्रकाश की ओर

चौथी तिथि पर सहजोबाई अज्ञान को चारों दिशाओं में फैले अंधकार के रूप में चित्रित करती हैं— “चौथ चहूँ दिस तिमिर है महा घोर भयमान। मूरख जन सोवत तहाँ मिथ्या ते अज्ञान॥¹⁰” यहाँ ‘तिमिर’ और ‘सोना’ दोनों आध्यात्मिक प्रतीक हैं। अज्ञान मनुष्य को वास्तविकता से दूर रखता है। वह बाहरी संसार को सत्य मानकर उसी में उलझा रहता है।

सहजोबाई इस भ्रम को तोड़ने के लिए अंतर्मुख होने का संदेश देती हैं— “बन बन ढूँढ़त फिरत राम अपने ही माहीं।¹¹” यह पंक्ति उनके आध्यात्मिक दर्शन की केंद्रीय पंक्तियों में रखी जा सकती है। परमात्मा बाहर नहीं, भीतर है। इसलिए उसकी खोज के लिए बाहरी भटकाव की अपेक्षा अंतर्मुख साधना आवश्यक है।

मेहँदी और लकड़ी के उदाहरण द्वारा वे इसी बात को स्पष्ट करती हैं— “ज्यों मिहदी में रंग है लकड़ी मध्य हु तास। सहजो काया खोजि ले काहे रहत उदास॥¹²” अर्थात् जैसे मेहँदी में रंग और लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है, वैसे ही परम तत्व मनुष्य के भीतर विद्यमान है।

6. पाँचौ (पंचमी): इंद्रिय-संयम और मन-विजय

पाँचवीं तिथि में सहजोबाई साधना को योगिक अनुशासन से जोड़ती हैं— “पाँचौ इन्द्री बस करौ मन जीतन की ठान। पवन रोक अनहद लगौ पावौ पद निर्बान॥¹³” यहाँ पाँच इंद्रियों को नियंत्रित करने का स्पष्ट निर्देश है। संत साधना में मन को चंचल बनाने वाली इंद्रियों का निग्रह अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। सहजोबाई आगे मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार को एकत्रित करके ध्यान में स्थिर करने की बात करती हैं—

“चित्त मन बुधि हंकार कूँ करौ इकट्टे आन। सहजो निज मन होय जब निश्चल लागै ध्यान॥¹⁴”

यहाँ साधना की दिशा स्पष्ट है; इंद्रिय-संयम → मन की स्थिरता → ध्यान → निर्वाण।

अर्थात् आध्यात्मिक मुक्ति सहजोबाई के लिए केवल विश्वास का परिणाम नहीं, बल्कि अनुशासित साधना का परिणाम है।

7. छठ (षष्ठी): आंतरिक योग और ज्योति का अनुभव

छठी तिथि में सहजोबाई की भाषा अधिक स्पष्ट रूप से योग-साधना और सूक्ष्म शरीर की ओर जाती है—

“छहूँ कँवल कूँ देख करि सतवें में घर छाव। रसना उलटि लगाव करि जब आगे कूँ धाव॥”¹⁵ “

यहाँ ‘छह कँवल’ को छह चक्रों से संबद्ध करके पढ़ा जा सकता है। साधक का ध्यान क्रमशः बाहरी इंद्रिय-जगत् से हटकर भीतर की सूक्ष्म चेतना की ओर जाता है।

आगे वे ‘जगमग ज्योति’, ‘मोती’ और ‘हंस’ जैसे प्रतीकों का प्रयोग करती हैं—

“जब आगे कूँ धाव देख करि जगमग जोती। बिन दामिनि चमकार सीप बिन उपजै मोती॥”¹⁶ “

प्रकाश आत्मानुभूति का प्रतीक है। साधना के भीतर प्रवेश करने पर साधक जिस आंतरिक ज्योति का अनुभव करता है, वह बाहरी प्रकाश से भिन्न है।

8. सातें (सप्तमी): सत्संग, सत्य और तुरीय अवस्था

सातवीं तिथि पर सहजोबाई सत्संग और सत्य की ओर लौटती हैं—

“सतसंगति ही कीजिये सत ही कथिये ज्ञान। सत ही मुख सँ बोलिए सत ही कीजै ध्यान॥”¹⁷ “

‘सत’ की पुनरावृत्ति महज भाषिक सौंदर्य नहीं है। इससे सहजोबाई साधना के नैतिक आधार को स्थापित करती हैं। सत्य को केवल जानना पर्याप्त नहीं; उसे बोलना और जीवन में धारण करना भी आवश्यक है। आगे वे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से आगे तुरीय अवस्था का उल्लेख करती हैं। इस प्रकार योग-दर्शन और संत साधना का समन्वय दिखाई देता है। तुरीय अवस्था चेतना की उस स्थिति का संकेत है जिसमें साधक सामान्य मानसिक द्वंद्वों से ऊपर उठकर निर्गुण-निराकार चेतना का अनुभव करता है।

9. आठें (अष्टमी): योग के आठ अंग और आत्म-पहचान

आठवीं तिथि स्पष्ट रूप से योग के आठ अंगों की ओर संकेत करती है—“आठन कूँ जानै नहीं दस कूँ नाहीं भेद। चौबीसो समझै नहीं कैसे छूटै खेद॥”¹⁸ “ यहाँ आठ अंगों के साथ दस यम-नियम, चौबीस तत्त्व और पाँच विकारों की ओर संकेत मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि सहजोबाई की आध्यात्मिक दृष्टि केवल भावुक भक्ति तक सीमित नहीं है। उनके यहाँ भक्ति के साथ योग, तत्त्वज्ञान और आत्म-अनुशासन का भी महत्त्व है। “चरनदास यों कहत हैं सहजो आपा हेर¹⁹ “ — इस पंक्ति में ‘आपा हेर’ अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप की खोज अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बाहरी संसार को जानने के साथ यदि मनुष्य स्वयं को नहीं जानता तो उसका ज्ञान अधूरा है।

10. नौमी (नवमी): ध्यान, अहिंसा और अंतर्मुखता

नवमी तिथि में सहजोबाई साधना के नैतिक और ध्यानात्मक दोनों पक्षों को जोड़ती हैं—“निंदा हिंसा त्याग करि तामस कूँ दे पीठ। चित कूँ अस्थिर कीजिये नासा आगे दीठ॥”²⁰ “ यहाँ ‘निंदा’ और ‘हिंसा’ का त्याग आध्यात्मिक साधना की नैतिक पूर्वशर्त है। इसके बाद ध्यान की प्रक्रिया बताई जाती है। इससे एक महत्त्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होता है कि सहजोबाई के लिए योग केवल शारीरिक अथवा तकनीकी अभ्यास नहीं है। उसका आधार आचरण की शुद्धता है। अर्थात् अंतर्मुख साधना के लिए बाहरी व्यवहार का परिष्कार भी आवश्यक है।

11. दसमी (दशमी): सर्वव्यापक ब्रह्म का बोध

दसवीं तिथि में सहजोबाई का चिंतन ब्रह्म की सर्वव्यापकता की ओर पहुँचता है—“दसो दिसा भर पूर है ता में ये सब पिंड। ज्यों सरवर में बुदबुदे ब्रह्म बीच ब्रह्मांड॥”²¹ “ ‘सरोवर में बुलबुले’ का प्रतीक अत्यंत प्रभावशाली है। बुलबुला सरोवर से अलग दिखाई देता है, लेकिन उसका अस्तित्व उसी जल पर निर्भर है। इसी

प्रकार जीव और जगत् परम ब्रह्म से पृथक दिखाई देते हुए भी उसी में स्थित हैं। यहाँ संत परंपरा के अद्वैतवादी संकेत स्पष्ट हैं।

सहजोबाई परम तत्त्व को अगम और अगाध बताती हैं तथा वेदों के ‘नेति-नेति’ संकेत का उल्लेख करती हैं। इससे उनकी वाणी में लोकानुभव और दार्शनिक परंपरा का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

12. एकादसी (एकादशी): इंद्रिय-निग्रह और आत्म-निवास

एकादशी पर संख्या ग्यारह को आधार बनाकर पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और मन को नियंत्रित करने की बात की गई है—

“ग्यारह गति जो चहत हौ तजौ जगत् की आस। कलह कल्पना

छाँड़ि के आतम में करि बास॥”²² “ यहाँ बाहरी इच्छाओं से भीतर की ओर लौटने का आग्रह है। ‘आतम में करि बास’ सहजोबाई की अंतर्मुख साधना का सार है। जब मन स्थिर होता है, तब साधक ध्यान और ध्येय के भेद से आगे बढ़ने लगता है—

“ध्याता थाके ध्यान में ध्यान ध्येय के माहिं। जनम मरन मिटि सहजिया उपजै बिनसै नाहिं॥”²³ “

यहाँ साधक, साधना और साध्य के बीच का भेद क्रमशः समाप्त होता है। यही आत्मानुभूति की दिशा है।

13. द्वादसी (द्वादशी): ममता, राग-द्वेष और विकारों का क्षय

बारहवीं तिथि में सहजोबाई ‘दावा’ अर्थात् अधिकार-बोध और ममता को त्यागने की शिक्षा देती हैं—

“द्वादस दावा दूर करि दावे ही में दुख। राग दोष और आपदा अकस निबारै सुख॥”²⁴ “

मनुष्य संसार की वस्तुओं, संबंधों और उपलब्धियों को अपना मानकर उन पर अधिकार स्थापित करता है। यही अधिकार-बोध आगे चलकर मोह और दुःख का कारण बनता है।

सहजोबाई समाधान के रूप में ज्ञान को सामने रखती हैं—

“काम क्रोध मद लोभ कूँ ज्ञान अग्नि सँ जार। जब निर्मल है सहजिया आनंद लहै अपार॥”²⁵ “

ज्ञान अग्नि का रूप ग्रहण करता है। वह काम, क्रोध, मद और लोभ जैसे विकारों को जला देता है।

अतः ज्ञान सहजोबाई के यहाँ केवल बौद्धिक सूचना नहीं, बल्कि अंतःकरण को रूपांतरित करने वाली शक्ति है।

14. तेरस (त्रयोदशी): देह की नश्वरता और सांसारिक मोह

तेरहवीं तिथि में सहजोबाई जीवन की अनिवार्य समाप्ति का अत्यंत प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करती हैं—

“तेरस तन अचरज महा छिनभंगी छल रूप। देखत ही देखत गये कहा रंक कहा भूप॥”²⁶ “

राजा और रंक दोनों की देह नश्वर है। मृत्यु सामाजिक पद, धन और प्रतिष्ठा का भेद समाप्त कर देती है।

आगे वे महल, धन और संतान के प्रति अत्यधिक आसक्ति पर प्रश्न उठाती हैं। यह संत साहित्य के उस व्यापक जीवन-दर्शन से जुड़ता है जिसमें संसार की उपलब्धियों को अस्थायी माना गया है।

सहजोबाई का उद्देश्य संसार को छोड़ने की मात्र शिक्षा देना नहीं है; वे मनुष्य को यह समझाना चाहती हैं कि जिस वस्तु का अंत निश्चित है, उसके प्रति पूर्ण आसक्ति विवेकपूर्ण नहीं हो सकती।

15. चौदस (चतुर्दशी): मानव-देह की दुर्लभता और मुक्ति की आकांक्षा

चौदहवीं तिथि में सहजोबाई मानव-जन्म की दुर्लभता को फिर से रेखांकित करती हैं— “चौरासी भुगती घनी बहुत सही जम मार।

भरम फिरे तिहुँ लोक में तहू न मानी हार॥”²⁷ “ चौरासी का प्रतीक संत साहित्य में जन्म-मरण के अनवरत चक्र का संकेत

है। सहजोबाई मनुष्य को इस चक्र से मुक्ति पाने की चेतना देती हैं। वे मानव-देह को 'हीरा' कहती हैं— "हीरा देही पाय मोल माटी के दीन्ही॥²⁸ " यहाँ मानव शरीर की तुलना हीरे से करना अत्यंत अर्थपूर्ण है। मनुष्य-जन्म अत्यंत मूल्यवान है, लेकिन अज्ञान के कारण जीव उसे सांसारिक मोह में नष्ट कर देता है। इस प्रकार चौदस तक पहुँचते-पहुँचते सहजोबाई का संदेश स्पष्ट हो जाता है, मानव-जन्म केवल सांसारिक उपभोग के लिए नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और मुक्ति के लिए है।

16. पूनो (पूर्णिमा): ज्ञान-चंद्रमा और अज्ञान का नाश

पूर्णिमा 'सोलह तिथियों' की आध्यात्मिक यात्रा का चरम बिंदु है। जिस चंद्रमा की प्रकाशहीनता अमावस्या में जीव के अज्ञान का प्रतीक थी, वही चंद्रमा पूर्णिमा में ज्ञान के पूर्ण प्रकाश का प्रतीक बन जाता है—

"पूनो पूरा गुरु मिलै मेटै सब सन्देह। वकंसोवत सँ चेतन होय देखै जाग्रत गेह॥²⁹ "

गुरु के मिलने से संशय मिटता है। साधक की चेतना जागती है। संसार, जो पहले सत्य दिखाई देता था, अब स्वप्न के समान प्रतीत होने लगता है।

अंततः सहजोबाई कहती हैं— "चरनदास कहैं सहजिया गुरु चरनन चित लाव। तिमिर मिटै अज्ञान कूँ ज्ञान चाँदनो पाव॥³⁰ "

यहाँ 'ज्ञान चाँदनो' अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीक है। प्रारंभ में चंद्रमा का अंधकार और अंत में ज्ञान का चंद्र-प्रकाश, इन दोनों के बीच पूरी आध्यात्मिक यात्रा निहित है।

सोलह तिथियों का समापन: गुरु-कृपा और अज्ञान का नाश

सहजोबाई स्वयं पूरी रचना का निष्कर्ष प्रस्तुत करती हैं— "सोलह तिथि पूरन भई, सहजो करी बखान। चरनदास की दया सँ, मिटौ सकल अज्ञान॥³¹ "

इन पंक्तियों में पूरी रचना का दार्शनिक सार उपस्थित है। आरंभ में अमावस्या का अंधकार था और अंत में पूर्णिमा का प्रकाश है। आरंभ में जीव अज्ञान से आवृत था और अंत में गुरु-कृपा से उसका अज्ञान मिट जाता है। इस प्रकार सोलह तिथियाँ वस्तुतः जीव की चेतना के क्रमिक विकास का रूपक बन जाती हैं।

चंद्रमा की कलाएँ और आध्यात्मिक विकास

'सोलह तिथियों' की सबसे उल्लेखनीय रचनात्मक विशेषता चंद्रमा की प्राकृतिक गति और साधक की आंतरिक यात्रा के बीच स्थापित साम्य है।

अमावस्या में प्रकाश का अभाव है। पहली तिथि में प्रकाश की आरंभिक संभावना दिखाई देती है। धीरे-धीरे प्रकाश बढ़ता है और पूर्णिमा में वह पूर्णता को प्राप्त करता है। इसी क्रम में सहजोबाई जीव को अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाती हैं।

इस संरचना को इस प्रकार समझा जा सकता है—

अमावस्या → अज्ञान और विस्मृति, पड़िवा → मानव-जन्म की चेतना, दूज → साधु-संगति, तीज → लोभ का त्याग, चौथ → अंतर्मुखता, पाँचौ → इंद्रिय-संयम, छट्ट → योगिक अंतर्दृष्टि, सातें → सत्संग और सत्य, आठें → योग और तत्त्वज्ञान, नौमी → ध्यान और नैतिक शुद्धि, दसमी → ब्रह्म की सर्वव्यापकता, एकादसी → इंद्रिय-निग्रह और आत्म-निवास, द्वादसी → विकार-क्षय, तेरस → देह की नश्वरता, चौदस → मुक्ति की आकांक्षा, पूनो → ज्ञान-प्रकाश और गुरु-कृपा यह क्रम केवल विषयों की सूची नहीं है। इसमें एक क्रमिक आध्यात्मिक तर्क है। सहजोबाई पहले मनुष्य को जगाती हैं, फिर उसे संसार की आसक्ति का बोध कराती हैं, उसके बाद साधना

और संयम की ओर ले जाती हैं और अंततः ज्ञान तथा गुरु-कृपा द्वारा अज्ञान के नाश तक पहुँचाती हैं।

लोक-संस्कृति और परमार्थ का समन्वय

सहजोबाई की काव्य-प्रतिभा का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे लोक में प्रचलित धार्मिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को आध्यात्मिक उपदेश का आधार बनाती हैं।

तिथियाँ सामान्य जन के जीवन का परिचित हिस्सा थीं। अतः जब सहजोबाई प्रत्येक तिथि के साथ कोई आध्यात्मिक संदेश जोड़ती हैं, तो उनका उपदेश लोक की स्मृति और अनुभव से जुड़ जाता है।

यही संत काव्य की संप्रेषणीय शक्ति है। शास्त्र के कठिन सिद्धांत को लोक के परिचित अनुभव में बदल देना संत कवियों की बड़ी उपलब्धि रही है। सहजोबाई इस परंपरा को अपनी विशिष्ट स्त्री-संत आवाज़ और सहज भाषा में आगे बढ़ाती हैं।

संख्या-प्रतीक और आध्यात्मिक अर्थ

'सोलह तिथियों' में संख्या स्वयं प्रतीक बन जाती है। पाँचवीं तिथि में पाँच इंद्रियाँ, छठी में छह कमल, आठवीं में आठ योगांग, एकादशी में ग्यारह इंद्रिय-मन संबंधी तत्त्व, द्वादशी में विकारों का त्याग और चौदहवीं में चौरासी के चक्र से मुक्ति जैसी अवधारणाएँ रचना को सांकेतिक संरचना प्रदान करती हैं।

इससे सहजोबाई की रचनात्मक पद्धति का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामने आता है, वे लोक-परिचित संख्या और तिथि को आध्यात्मिक स्मृति के उपकरण में बदल देती हैं।

उनकी कविता में संख्या केवल गणना नहीं है; वह साधना की दिशा बताने वाला संकेत है।

स्त्री-संत कवयित्री के रूप में सहजोबाई की विशेषता

सहजोबाई को केवल 'महिला संत' कहकर उनके काव्य की विशिष्टता समाप्त नहीं की जा सकती। उनका महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने संत परंपरा के दार्शनिक और योगिक विमर्श को अपनी स्वतंत्र काव्यात्मक अभिव्यक्ति में रूपांतरित किया—"सहजोबाई प्रारंभ से ही तत्त्वान्वेशी साधिका साधिका तथा दार्शनिक चिन्तक थीं। काव्य-साधना के क्षेत्र में उन्होंने अपने गुरु चरनदास जी को पीछे छोड़ दिया था। मीराबाई की भक्ति भावना एवं काव्य साधना का उन पर गहरा प्रभाव था।³² "

'सोलह तिथियों' में वे योग, तत्त्वज्ञान, इंद्रिय-संयम, ध्यान, ब्रह्म, तुरीय अवस्था और मुक्ति जैसे गंभीर विषयों पर बिना किसी संकोच के बोलती हैं। इससे मध्यकालीन संत परंपरा में स्त्री की आध्यात्मिक वाणी की महत्वपूर्ण उपस्थिति सामने आती है।

आधुनिक स्त्री-विमर्श की अवधारणाओं को सीधे सहजोबाई पर आरोपित करने के बजाय यह देखना अधिक उचित होगा कि उनकी वाणी में एक स्त्री साधिका का आत्मविश्वासी आध्यात्मिक व्यक्तित्व किस प्रकार निर्मित होता है। वे गुरु-परंपरा में रहते हुए भी अपनी अनुभूति को स्वयं व्यक्त करती हैं और आध्यात्मिक ज्ञान की व्याख्या अपने काव्य में करती हैं।

भाषा और अभिव्यक्ति की सहजता

सहजोबाई की भाषा 'सोलह तिथियों' में अत्यंत लोकाभिमुख और स्मरणीय है। 'मकखी-घी', 'पानी का बुलबुला', 'सरोवर के बुदबुदे', 'हीरा देही', 'ज्ञान चाँदनो' जैसे बिंब जटिल आध्यात्मिक अवधारणाओं को सहज बना देते हैं।

उनकी भाषा में उपदेशात्मकता अवश्य है, किंतु वह केवल शुष्क नैतिक उपदेश नहीं बनती। उसके पीछे दृश्य, प्रतीक और अनुभव उपस्थित हैं।

विशेष रूप से 'चंद्रमा' का केंद्रीय प्रतीक पूरी रचना को एक काव्यात्मक एकता प्रदान करता है। अमावस्या का तिमिर और

पूर्णमा का चाँदना इस रचना की आरंभिक और अंतिम अवस्थाओं को जोड़ते हैं।

‘सोलह तिथियाँ’ का दार्शनिक आशय

दार्शनिक दृष्टि से ‘सोलह तिथियाँ’ को पाँच प्रमुख स्तरों पर समझा जा सकता है। दर्शन के बारे दिवाकर जी लिखते हैं “ ‘दर्शन’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘दृश्य’ धातु में ‘ल्युट’ प्रत्यय लगने से हुई है, जिसका अर्थ है— जिसके द्वारा देखा जाए। जो आँखों से नहीं देखी जा सकती उसके लिए सूक्ष्म दृष्टि अर्थात् दर्शन की आवश्यकता पड़ती है। उपनिषदों और अन्य शास्त्रों में इसका सर्वत्र प्रयोग हुआ है। माया के आवरण से सत्य का मुख ढका हुआ है। जब आवरण हट जायेगा तो सत्य रूपी ब्रह्म के दर्शन हो जाएंगे।³³ ”

■ अज्ञान से ज्ञान

अमावस्या का अंधकार जीव के अज्ञान का प्रतीक है और पूर्णिमा का प्रकाश ज्ञान का।

■ बाह्यमुखता से अंतर्मुखता

चौथी तिथि से भीतर स्थित राम की खोज, पाँचवीं से ध्यान और आगे की तिथियों में आत्म-निवास का विचार विकसित होता है।

■ विषयासक्ति से संयम

दूज और तीज में सांसारिक धंधे तथा लोभ से सावधान किया गया है; पाँचवीं से इंद्रिय-संयम और बारहवीं से विकार-क्षय का मार्ग आता है।

■ देह-बोध से आत्म-बोध

पहली तिथि में देह की क्षणभंगुरता का संकेत मिलता है और आगे आत्मा तथा परम तत्व की खोज विकसित होती है।

■ साधना से आत्मानुभूति

गुरु, सत्संग, नाम, योग, ध्यान और ज्ञान के क्रम से साधक पूर्णिमा के ज्ञान-प्रकाश तक पहुँचता है।

निष्कर्ष

सहजोबाई की ‘सोलह तिथियाँ’ संत काव्य में समय, लोकविश्वास और आध्यात्मिक साधना के अद्भुत समन्वय का उदाहरण है। उन्होंने तिथियों को केवल कालगणना की इकाइयों के रूप में ग्रहण नहीं किया, बल्कि उन्हें जीव की आध्यात्मिक यात्रा के संकेतों में रूपांतरित कर दिया।

अमावस्या से पूर्णिमा तक चंद्रमा की बढ़ती हुई ज्योति उनके यहाँ जीव की चेतना में विकसित होते ज्ञान का प्रतीक बनती है। अमावस्या अज्ञान और विस्मृति की स्थिति है; पड़िवा मानव-जन्म की क्षणभंगुरता का बोध कराती है; दूज और तीज संसार तथा लोभ की आसक्ति से सावधान करती हैं; चौथ अंतर्मुख होने का संदेश देती है; पाँच इंद्रिय-संयम, छट योगिक चेतना, सात सत्संग और सत्य, आठ योग और तत्त्वज्ञान, नौमी ध्यान तथा नैतिक शुद्धि, दसमी सर्वव्यापक ब्रह्म-बोध, एकादशी आत्म-निवास, द्वादशी विकार-क्षय, तेरस देह की नश्वरता और चौदस मुक्ति की आकांक्षा को सामने लाती है। अंततः पूनो गुरु-कृपा से प्राप्त ज्ञान-प्रकाश और अज्ञान के पूर्ण नाश का प्रतीक बन जाती है।

इस पूरी यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि सहजोबाई आध्यात्मिक मुक्ति को किसी एक क्षण की उपलब्धि के रूप में नहीं, बल्कि चेतना के क्रमिक परिष्कार के रूप में देखती हैं।

नाम-स्मरण से आरंभ होकर इंद्रिय-संयम, साधु-संगति, योग, ध्यान, ज्ञान और गुरु-कृपा तक पहुँचने वाली यह प्रक्रिया मनुष्य को भीतर से बदलती है।

सहजोबाई का यह कथन— “सोलह तिथि पूरन भई, सहजो करी बखान। चरनदास की दया सँ, मिटौ सकल अज्ञान॥” यहाँ पूरी रचना का सार प्रस्तुत करता है। चंद्रमा का पूर्ण होना यहाँ जीव की आध्यात्मिक पूर्णता का प्रतीक है। इस दृष्टि से ‘सोलह तिथियाँ’ केवल धार्मिक उपदेशात्मक रचना नहीं, बल्कि अज्ञान से ज्ञान, बाहरी भटकाव से अंतर्मुखता और संसारासक्ति से आत्मानुभूति तक की क्रमिक आध्यात्मिक यात्रा का काव्यात्मक रूपक है।

यही सहजोबाई की काव्य-दृष्टि की मौलिकता है कि उन्होंने लोकजीवन में सहज रूप से उपस्थित तिथि और चंद्रमा की गति को मनुष्य के भीतर घटने वाली आध्यात्मिक प्रक्रिया का प्रतीक बना दिया। इसीलिए ‘सोलह तिथियाँ’ सहजोबाई के काव्य में आध्यात्मिक चेतना और जीवन-दर्शन को समझने वाली एक महत्वपूर्ण रचना के रूप में विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखती है।

संदर्भ-सूची

1. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारती भंडार लीडर-प्रेस १९७२, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 722
2. वर्मा, डॉ. रामकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृष्ठ संख्या 277
3. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ संख्या— 154,
4. पृष्ठ संख्या— 155,
5. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ 155
6. वही पृष्ठ 155
7. पृष्ठ संख्या— 156
8. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ 156
9. पृष्ठ संख्या— 157
10. पृष्ठ 157
11. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ 158
12. वही पृष्ठ 158
13. वही पृष्ठ 158
14. वही पृष्ठ 158
15. वही पृष्ठ 159
16. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ 159
17. वही पृष्ठ 159
18. पृष्ठ 160
19. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ संख्या 162
20. वही पृष्ठ 161
21. वही पृष्ठ 161
22. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ 162
23. वही पृष्ठ 162
24. वही पृष्ठ 163
25. वही पृष्ठ 163
26. वही पृष्ठ 163
27. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ 164
28. वही पृष्ठ 164

29. वही पृष्ठ 165
30. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013, पृष्ठ 165
31. वही पृष्ठ 166
32. गरवा, दिवाकर, "सहजोबाई की दार्शनिक चेतना," आजकल, मार्च 2012, प्रकाशन विभाग, सुचना भवन, नई दिल्ली, पृष्ठ 39
33. गरवा, दिवाकर, "सहजोबाई की दार्शनिक चेतना," आजकल, मार्च 2012
34. सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, बेलडियर प्रेस, प्रयाग, 1977
35. डॉ. शंगारी, टी. आर, सहजोबाई और दयाबाई, राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, 2013,
36. गरवा, दिवाकर, "सहजोबाई की दार्शनिक चेतना," आजकल, मार्च 2012, प्रकाशन विभाग, सुचना भवन, नई दिल्ली
37. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, उत्तर भारत की संत परंपरा, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1972
38. वर्मा, डॉ. रामकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2017, पृष्ठ 277